संवाद संभव

संवाद संभव

शारदा कृष्ण



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के
आर्थिक सहयोग से प्रकाशित



डी-228-सी, मुरलीधर व्यास कॉलोनी
बीकानेर 334004

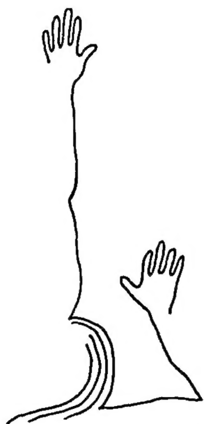
प्रथम सस्करण . 2004 ई.
मूल्य : एक सौ रुपये मात्र
आवरण : अडिग
मुद्रक : सांखला प्रिण्टर्स, सुगन निवास
चन्दनसागर, बीकानेर 334001

ISBN-81-901843-6-9

SAMVAD SAMBHAV (Poems) by Sarda Krishna

Rs 100 00

अनुक्रम



बरसों बरस अकेले...

पथ भूले हैं आज

समय का कैसा यह परिहास।
विजन में पथ भूले है आज।

कहीं झंकृत वीणा के तार,
बजे शहनाई सागर पार,
गीत, लय, ताल गये सब भूल,
साँस की सरगम के प्रतिकूल,

देह ने पहना शाही ताज़।
विजन में पथ भूले हैं आज।

दर्द का दमन चक्र विद्रोह,
प्यास का मृग मरीचिका मोह,
त्रस्त मानस का हर आरोह,
न तय कर पाता ये अवरोह,

कहें किससे मन का संत्रास।
विजन में पथ भूले हैं आज।

प्यार का पहचाना-सा रूप,
बदलते चेहरों के अनुरूप,
कटी शाखा का तरु से मोह,
मूक वाणी शब्दों की टोह,

रंग-बदरंग हुए सब साज।
विजन में पथ भूले हैं आज।

सवेरा फिर क्यूँ आया

उदयाचल का अरुणोदय,
क्यूँ आज सवेरा फिर ले आया।

पल-पल की निर्विघ्न उदासी
मन भूखा ये आँखें प्यासी
इंतजार था जिनका वो हैं
मेरे भावनगर के वासी

उनको जब तू संग न अपने लाने पाया
बेमतलब बिन चाह सवेरे तू क्यों आया।

सूरज की हर किरण सुनहरी
सूनी-सी आलसी दुपहरी
बीत गई संध्या चुपके-से
घेर लिया रजनी ने गहरी

गहन अँधेरे में से भी सूरज उग आया
उन के बिन बेदर्द सवेरे तू क्यों आया।

तिल-तिल कर इस दिल का जलना
यंत्रित-सा यह चलना-फिरना
थके बटोही से मंजिल की
भूली-बिसरी राह खोजना

बेचैनी से भरा दिवस तो ढल न पाया
ये नीरव निस्तब्ध सवेरा कैसे आया!

सध्या रवि के अस्ताचल में
रात सुबह के इंतजार में
कट जाती है हर दोपहरी
रात प्रात के ही चितन में,

जैसे-तैसे काटा दिन कटने ना पाया
बिना सुखद संदेश सवेरे, तू क्यों आया!

सूख गये आँसू आँखों में
कैद रुलाई है होंठों में
पड़ी गले मे जीवन-फाँसी
घुट-घुट कर मरना साँसों में

पहर आखिरी अभी रात का ढल ना पाया
निपट अकेला, यता सवेरे! तू क्यों आया?

सपने

नींदो में भी जगे हुए है।
सपने किसके सगे हुए हैं।

सन्नाटों में कान सभी के,
दीवारों से लगे हुए हैं।

लाल हुए हों या हों काले,
हाथ सभी के रँगे हुए हैं।

लालबहादुर, गाँधी, नेहरू,
दीवारों पर टँगे हुए हैं।

मंदिर के सारे सत्संगी,
धुत्त नशे में पगे हुए है।

भाई ही भाई के घर की,
नीलामी में लगे हुए है।

औरों की क्यों बात करें हम,
अपनों से ही ठगे हुए हैं।

मंचासीन मूक चेहरो के,
अभिनय कितने मँजे हुए है।

रातों के काले आँचल से
उजले आनन ढँके हुए हैं।

लक्ष्मण-सी रेखा मत खींच

तेरे मेरे उसके बीच,
लक्ष्मण-सी रेखा मत खींच।

सागर-सा गहरा बन कर तू,
मोती दोनों हाथ उलीच।

जाने वाले को जाने दे,
हाथ पकड़ उसको मत खींच।

रेत हाथ से सरकेगी ही,
चाहे जितनी मुट्ठी भींच।

सूरज तो सूरज है आखिर,
देख भले ही आँखें मींच।

सदियों से गहरा नाता है,
कमल और कीचड़ के बीच।

एक खुदा के बन्दे सारे,
कितने ऊँचे, कितने नीच।

लुटी है लाज

अपनों बीच लुटी है लाज।
तुम बिन किसे पुकारूँ आज।

पीड़ा बेसुर पगलाई-सी,
विकृत वीणा टूटे साज।

झूठे को सच मनवाता है,
नगर अँधेरा चौपट राज।

बात विरासत की होनी थी,
मिला मुझे काँटों का ताज।

मन के सारे घाव बने हैं,
राणा साँगा के अंदाज़!

दु:शासन के हाथों कैसे,
बचे द्रौपदी जैसी लाज!

तुम बिन किसे पुकारूँ आज।

हुए ही हैं इम्तहान

नतीजे पूछ मत मेरी जान
अभी तो हुए ही हैं इम्तहान

शब्दों या अंकों से नाम की
ठीक से होती नहीं पहचान

आँख लगे जो आखरी पहर
सुबह की सुनती नहीं अजान

शिकारी के होते जो हौसले बुलन्द
ऊँचाइयों पे इतने बनते नहीं मचान

हीरे-मोती जो बटोरते गोताखोर
समन्दर होता नहीं रत्नों की खान

आपस में रहे नहीं होते जो शिक़वे
हम भी कहाते दो जिस्म एक जान

काबिल नहीं हूँ

हो सके तो दुश्मनी कर, प्यार के काबिल नहीं हूँ।
हर सजा मंजूर है, अंजाम के काबिल नहीं हूँ।

जिंदगी बस मात्र एक बूढ़ी तवायफ़ रह गई है,
दोस्त, तेरी महफ़िलों में आ सकूँ, काबिल नहीं हूँ।

वायदों की वारदातें भूलना गुस्ताखियाँ हैं,
माफ़ करना प्रेम के प्रतिदान के काबिल नहीं हूँ।

मंजिलों की राह में, अफ़सोस! एकाकी रहोगे,
मैं तुम्हारे साथ के इस वक्त भी काबिल नहीं हूँ।

हर तरफ मज़बूरियाँ जंजीर-सी जकडी गई हैं,
मित्र! मत आँसू बहा, मैं नेह के काबिल नहीं हूँ।

बस, खुशी के नाम पर जो-कुछ मिला, तुमसे मिला है,
क्या करूँ मरहम, तुम्हारे दर्द के काबिल नहीं हूँ।

शब्द बागी हो गये हैं

वक्त के विद्रोहियों के खानदानी हो गये हैं।
इन्द्रियाँ हड़ताल पर हैं, शब्द बागी हो गये हैं।

जब कभी उम्मीद बाँधी, मौन समझौते हुए हैं
हम समय की माँग पर आतंकवादी हो गये हैं।

सर उठाने पर दिखे जब दर्द के बिंदास केवल
मौन नज़रों में छुपाकर भी सवाली हो गये हैं।

हर गली के मोड़ पर तैनात पहरेदार थे पर
फैसलों के बाद हम हाजिरजवाबी हो गये है।

ढूँढते हैं लोग गलियों मे मुझे तस्वीर से जब
मुँह नकाबों से छुपा नेपथ्यगामी हो गये हैं।

बस, सुबह से शाम तक चेहरा बदलकर घूमते हैं
रात-दिन फिरते फिरे खानाबदोशी हो गये है।

अब कभी जब आयें, मिलें, बैठें थडी पर चाय की
गौर करना दोस्त हम नग़माफ़रोशी हो गये है।

भीड़ से गुजरते हैं

जीने के नाम पर बार-बार मरते हैं।
सीने में रोज नया दर्द लिए फिरते हैं।

महफ़िलों में बात चलती है सपनों की,
क्या मालूम उनको हम रात-रात जगते हैं।

गुनाहों के नाम पे और कुछ नहीं किया,
सिर्फ एक जिन्दगी का जुर्म लिए फिरते हैं।

पीने को पलकों की नमी तक पी गये,
जेठ की दुपहरी-सी प्यास लिए फिरते हैं।

होश जबसे सँभाला, सब-कुछ वही है,
हम फिर भी आजकल बदहवास रहते हैं।

सूने गलियारों को नज़रों से छान लिया,
ढूँढ़ने उनको हर भीड़ से गुजरते है।

फागुन में लोग

फागुन में फगुनाए लोग
इधर-उधर बतियाएँ लोग
सावन की भूली-बिसरी
यादों को फिर दोहरायें लोग

सुबह-सवेरे ठंड गुलाबी
पोखर बीच नहाएँ लोग
दिन के सँग-सँग भाँग चढ़े ज्यों
बेमतलब बौराये लोग

पीपलगट्टा, मझ दोपहरी
चंग पर फाग सुनाएँ लोग
जाने किस बिरहन के मन की
सोयी टीस जगाएँ लोग,

गाँव, गली, नुक्कड़, चौराहा
आँगन से कतियाएँ लोग
साँझ-सकारे चढ़ चौबारे
भावज से बतियाएँ लोग

रंगों की सपनों की बातें
नयनों से समझाएँ लोग
परदेसी भैया की पाती
पढ़ने को ललचाएँ लोग।

शाख से टूटे हुए हैं

आँधियों के देस में
उजड़े घरौंदे-से हुए हैं
इन दरख्तों से उजाले
किस कदर रूठे हुए हैं

फिर इशारा कर रही है
दूर से आती हवाएँ
गाँव की पगडंडियों पर
पाँव कुछ छूटे हुए है

जिंदगी के नाम पर
कुछ आँसुओं की कतरने हैं
अक्स जिनमें दीखते
वो आईने टूटे हुए है

हम नहीं हैं बादलों के
पार की कोई हकीकत
हम नहीं हैं शाख
लेकिन शाख से टूटे हुए हैं।

यह तो न सोचा था

न जाने ये क्या हुआ मेहँदियों को तनहाई में
राचेंगी इस कदर यह तो न सोचा था।

महक मुस्कराहटों की यूँ समा गई नज़रों में,
रूठोगे इस कदर यह तो न सोचा था।

पी गये नज़रों से इतना-कुछ बेहिसाब,
बहकेंगे इस कदर यह तो न सोचा था।

लड़खडाए पाँव जो देहरी को लाँघकर,
लौटेंगे इस कदर यह तो न सोचा था।

धूप की कतरनो का सरोकार सूरज से
भूलोगे इस कदर यह तो न सोचा था।

यन्त्रणा कुबेर हो गई

भीड़ का शिकार हो गई।
बस्तियाँ उजाड़ हो गई।

ध्वस्त मौन के महल हुए,
कल जहाँ अजान हो गई।

देव दानवों से जा मिले,
वेदियाँ मसान हो गई।

प्यार ब्याज पर नहीं मिला,
हर खुशी उधार हो गई।

प्यास ने कहर जो ढा दिया,
भूख बेनकाब हो गई।

देह ने असल दगा किया,
अस्थियों का ढेर हो गई

फिर दिवालिया हुए हैं हम
यन्त्रणा कुबेर हो गई।

राख की ढेरियों को बुझाते रहे

प्यार की होलियाँ यूँ ही जलती रही,
लोग लपटों से आँचल बचाते रहे।
रह न जाये कहीं कोई चिंगारी
हम, राख की ढेरियों को बुझाते रहे।

उम्र जल जायेगी दर्द की आग से,
इश्क की इस चुनौती से डरते रहे।
दिल को नीयत पे दुनिया की बेमानियाँ,
आजमाने की साजिश-सी रचते रहे।

यूँ उठा करके दामन को हाथों में हम,
उम्र की तग गलियो में छुपते रहे।
मिल न जाये कहीं कोई पहचान का,
इसलिए वेशभूषा बदलते रहे।

पर समय था बहा ले गया साथ में,
हम ठहरने की जिद-सी पकड़ते रहे।
कौन सुनने को बेताब है पूरी कथा,
हम अकेले कथानक से लड़ते रहे।

समय रुक गया है

ये रातें तनहाई के तारों की झिलमिल,
मधुर चाँदनी का चंदोवा तना है।
बरसती ये चाँदी की किरणें गगन से,
तुम्हें याद करके समय रुक गया है।

ये नीरव निशा आँसुओं का निमंत्रण,
तुम्हें ढूँढ़ते चाँद भी थक गया है।
ये दिल पूछता है घनी चाँदनी में,
कहाँ छिप गये हो, समय रुक गया है।

सिमटने लगा रात का दायरा भी,
कि मैं ही नहीं चाँद भी बदगुमाँ है।
वो बुझने लगे रूठकर सब सितारे,
तुम्हारे बिना फिर समय रुक गया है।

प्रेम का प्रतिदान कैसा

प्रिय तुम्हारी याद में यह दर्द का अभिसार कैसा,
आँसुओं के हार से ही प्रीत का सम्मान कैसा।
प्रेम का प्रतिदान कैसा!

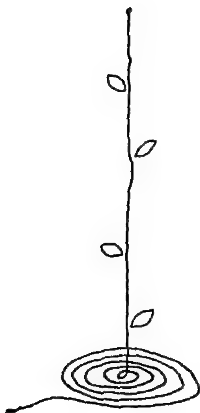
ले लिया काजल घटाओं की उमड़ती मस्तियों ने,
दृश्य को आतुर नयन में नीर का संचार कैसा।
प्रेम का प्रतिदान कैसा!

अग्नि रेखा-सी दमकती माँग का सिंदूर फीका,
सजन तुम बिन नित्य का ये देह में शृंगार कैसा।
प्रेम का प्रतिदान कैसा!

रोकती आँचल उड़ाने से, हवाएँ रूठती हैं,
विरहिनी की यातनाओं का उन्हें अनुमान कैसा।
प्रेम का प्रतिदान कैसा!

अनमनी बिंदिया सुहागिन रोज बतियाती अधर से,
बावरे, परदेसियों की प्रीत का अभिमान कैसा।
प्रेम का प्रतिदान कैसा!

क्या लिखूँ तुमको प्रिये मैं पीर की पायल बनी हूँ,
नृत्य-नूपुर-भाव बिन अनुभाव का संचार कैसा।
प्रेम का प्रतिदान कैसा!



—भेदते हुए जलव्यूह...

कल्पित

कल्पित ही तो है
अब भी
मेरे जीवन में
सब-कुछ कल्पित.
सपने जो होते यथार्थ
बस रहे कल्पना
बिन होली-दीवाली
मेरे उर-आँगन में
सुधियों ने
जब-जब माँडी
अनमनी अल्पना
रंगों ने कितने
आयाम नहीं बदले
यदि हो पाती मुस्कानें
अविरल
आँसू-आँसू आँखों में.

मैंने जब-जब चाहा
पकड़ूँ परछाईं
ओढ़ूँ साँझ चुनरिया
सूरज दमके बिंदिया में
कल-कल झरनों का नाद
बने पायल मेरी
खन-खन खनके कंगन

आँचल में मेघ घनेरे
झिलमिल तारे
घनी फुहारें
सारे फूलों की खुशबू से
भरे सवेरे
किरणों के झुरमुट
बाँधूँ वेणी में
ले चलूँ हँसी उजली-सी
होंठों पर
चदन चर्चित
तन-मन
कर दूँ अर्पित
लेकिन
कल्पित!
सब-कुछ तो है
कल्पित
केवल कल्पित!
मेरे जीवन में.

छोटी बहन के लिए

ज्यों समाई हो
नदी में इक सदी
तुम समय की धार हो
बहती रहो!

सुर सजी-सी
आरती तुम
वन्दना!
साधना शुचि पर्व बन
सजती रहो!

सीप बन सिरजो
हृदय के हार को
शुक्ति-मुक्ता द्वीप हो
दिपती रहो!

तुम विरासत हो
धरा के धैर्य की
व्योम-सी विकसित
विपुल विस्तार ले
बढ़ती रहो!

पेड़ होता आदमी

आदमी होता
यदि पेड़
मारता कुल्हाडी
अपने पाँवों पर?
शायद नहीं कराहता जंगल
मौन रह
आतप तपस्वी-सा
खडा रह विजन में
निहारता वैभव विपिन का
कभी वह भी तो था
एक हिस्सा इसी का.

एक बार बन चुका जो पेड़
आदमी नहीं बन सकता
शाखें नहीं चलाती आरी
वक्ष बनते नहीं तने
और पाँव हो नहीं सकते
जडों से जड
क्योंकि
जब भी कटते है जंगल
भागता है आदमी ही
पेड़ देखता है
मौन हो,
खड़ा रह

उनकी कवायद
एक ताल
हाथ से हाथ
मिलते कदम
रौंदते हैं जंगल
आदमी के तने हुए धड़

रात के अँधेरों में
कंकरीट से ढाँपते हैं वे
धरती के सीने पर
पेड़ों के कटे हुए घाव
सिसकता नहीं जंगल तब
मौन रुदन सुनाई नहीं देता
क्योंकि
नहीं जानते वे
घाव का निह्नव
नासूर बनता है
पीढ़ियों के चेहरों से
धुलते नहीं
बदनुमाँ दाग
काश! उन्हें सुनता वह ब्रह्मवाक्य
जो सुना था देवों ने
'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य
स्वयं छेतुम्
असाम्प्रतम् भवति'

अधजले अंगारे

कहाँ तक संगत है
अधजले अंगारों का राख हो जाना

छत पर टहलता चाँद
पेड पर टँगा हुआ सूरज
कब देख पाये हैं
हरी पत्तियों का
चुपचाप पीलापन
हरियाली से जिनका नैतिक सम्बन्ध था
पीलापन उम्र का तकाज़ा-भर!

अस्तंगत सूर्य
और जलता प्रदीप
दोनों ही बेहतर हैं
अँधेरे के लिहाज से

कब हरी पत्तियाँ पीली पडती हैं
अधजले अंगारे राख बनते हैं
कब देख पाया है कोई
लपटें उठना
अंगारे दहकना
कजलाना
बुझ जाना
और फिर
धीरे धीरे धीरे
राख होते जाना
मत उड़ाओ इसे, हवा!
शायद अभी दबी हो
कोई चिनगारी!

संवाद संभव

संवाद कभी संभव नहीं हुआ
हम दोनों के बीच
अक्सर एक साथ
एक खास मुद्दे पर आकर
हम बेजुबान हो गये.

माँ कहती थी
सुख और दुःख अलग-अलग नहीं हैं
एक ही रोटी के दोनों टुकड़े
भूख मिटाने की खातिर
खा लेने होते हैं
एक ही तरफ से देखने पर भी
दूसरा पहलू अनदेखा
नहीं रह जाता
दोनों का.

रात-रात-भर जागकर
अक्सर
मैंने सुलझाना चाहा
यह समीकरण
नहीं मिले जवाब मुझे
प्रश्नों के उत्तर में
प्रश्न थे केवल

और तय किया मैंने
रोटी को रोटी ही रहने दूँ
सुख और दुःख में
बाँटने की बजाय
तरतीब से रख लूँ
दोनो टुकडे
आखिर मेरे ही तो हिस्से हैं.

उलट-पुलट होना इनका
शायद वजह नहीं
संवाद संभव होने की
भूमिका में थे
दोनों हिस्से दुःख के
या
दोनों हिस्से सुख के

अभी भी
पसरा है
मौन संवाद
प्रश्न और
उत्तर की परिधि में
फिर
मुखर होता हुआ।

पहली कविता

तीसरी कविता के बारे में
सोचने से पहले
आओ हम बात करें
दूसरी कविता की
जिसे तुम जब-जब
लिखने बैठे
पहली कविता आ गई बीच में
बेवज़ह
बासबब

नहीं लिखी गई पहली कविता
न सही
दूसरी लिखो, मगर
भूलकर वह पुराना किस्सा
कि इससे पहले भी
तुमने लिखनी चाही थी
एक खूबसूरत कविता

खूब कविताएँ लिखोगे तुम
पूरा होगा मेरा वह सपना
जो मैंने देखा था
तुम्हारे कवि बनने से भी पहले
पर
कितना अच्छा होता
जो तुम्हारी यह
काव्ययात्रा

शुरू होती
दूसरी कविता से ही
पहली कविता
आती ही नहीं
तुम्हारी जिन्दगी की उस गुनगुनी उमर में
यह अवसाद लेकर
कि अब तुम जब भी
लिखने बैठो
मन-माफ़िक गीत
अतीत की टूटी-छूटी कड़ियाँ
घेरती रहें तुम्हें
वक्त-बेवक्त

फिर भी लिखो तुम
लिखते चले जाओ
ताकि भूल पाओ
कलम की नोक पर थमी
प्यार के प्रथम चुंबन से भी मधुर
सृजन के शुचि-पर्व में
प्रस्फुटित अलिखित
मुक्त छंद-सी
वह पहली कविता
उसकी प्रथम पंक्ति
जिसे तुम
अभी भी
नहीं लिख सके।

तुम्हारे चले जाने से

खूँटी पर टँगी हुई कमीज़
पतलून
थैला
बिखरी हुई किताबें
मुड़ा हुआ तकिया
संकेत देते हैं
कुछ वक्त पहले
तुम्हारे यहाँ होने का

मेरे आने से पहले
अभी-अभी तुम
गये हो शायद
कि सिगरेट की थोड़ी-सी गंध
अभी भी बाकी है
कमरे में

लौट कर आने का
कोई तय नहीं तुम्हारा
पर
कमरा कितना उदास है
तुम्हारे चले जाने से।

मन

रोज टूटे दरपन के
टुकड़ों-सा
बिखरता है, मन।
फिर-फिर बटोरती हूँ इन्हें
सँभाल कर रखती हूँ
घर के किसी कोने में
क्योंकि
ये विभाजित विम्ब
बनेंगे मेरी
पूरी अस्मिता।

अतीत की तरह
चुभेंगे कलेजे में
जब-कभी ये
नुकीले टुकड़े
शायद तभी हो
एहसास
वासंती हवाओं में
सोये चक्रवातों का
कराहती रियाज़ों में
ढले मधु-गीतों का
याद करते हुए
बीती बातों का ये सिलसिला
सिमट जायेगा एक दिन
एकलव्य के लक्ष्य-वेध सा!

आज
एक-एक कर
फिर दुहरा लिए है
वे मौन पाठ
जिनके शब्द-शब्द
बागी थे।

रोके कोई इन्हें
निकल-निकल आते ये
नज़रों की कैद से
आँसू नहीं जो
दर्द के खण्डहर में
छुपी हुई बगावत-से
फिर-फिर पनपते हैं
कैंसर के घाव-से
रिसते ही जाते हैं
अंदर से अंदर तक!

तुम बिन

बरसों-बरस
अकेले तुम बिन
बीत गये!
कैसे बीते,
ये तुम जानो,
या ना जाने
कोई शायद!

उत्सव रचने थे
जब मुझको
अंतस के दीप
जलाए मैंने राहों में
अन-गिन,
पल-छिन,
हर-दिन,
गिन-गिन!

तुम भूलो पथ
फिर कहीं अगर
तो
देखो ही पहचान सको
मन-आँगन को।

प्रेम

प्रेम
मेरे पिता ने किया
दूसरी औरत से
मैं नेपथ्य हो गया
माँ के साथ

प्यार में
बँध गई मेरी बहन
एक विजातीय से
राखी के दिन
बेमानी हो गये
मेरे हाथ

मेलजोल
बढ़ने लगा मेरे पुत्र का
सहपाठिन के साथ
बहुत दिनों से
अब बंद-सी हो गई
मेरी उसकी बात

लेकिन
मुझे याद है
माँ का धीरज
स्नेह के दो सूत्र
आज भी उडीकती है
मेरी कलाई

लौटेगा जरूर
किसी पूस की ठंडी रात
मेरा बेटा
मुझे कंधा देने
आएगा जरूर

क्योंकि
प्रेम
कथन नहीं उक्ति है
मुक्ता नहीं
शुक्ति है
बंधन नहीं
मुक्ति है!

भेदते हुए जलव्यूह

अब तक नहीं सुनी होगी
किसी ने
धोरों के पार से
पुकारती
रेतीली आवाज़

भरभरा जाती है वह
या फिर उड़ा दी जाती है
सूने रेगिस्तान के
सन्नाटे को भेदती
काली-पीली आँधियों के साथ

हम जानते हैं
उन सागरवासियों को
जिन्होंने मिल-बैठकर
रचा है यह
आँधीनुमा षड्यन्त्र
मरुस्थल के ख़िलाफ़!

ये वही ताकतवर लोग हैं
जिन्होंने दबाया है
हर बार
इस कमज़ोर और
काँपती आवाज़ को
शताब्दियों से

नहीं सुनी है यह पुकार
किसी समन्दर ने
किसी नदी ने
किसी कुएँ ने भी नहीं

बल्कि
इन्होंने तो की है कोशिश
इसके अस्तित्व को
नकारने की

पर तुम्हें शायद
नहीं है आभास
ओ सागर के वासियो!
भेद देगी ये दुर्बल आवाज़
अपने बलशाली प्रहार से
तुम्हारा रचा हुआ
जलव्यूह!

उसी दिन होगा
पुनर्सृजन सृष्टि का
तब लिया जायेगा बदला

सदियों पुराने
इस उत्पीड़न का।
उस दिन गिनाए जायेंगे तुम्हें
विश्वासघात, छलावे औ छद्म

उसी दिन मुक्त होगा थार
खेजड़ी और धोरे
मधुमास के
सर्वाधिकारी लगान से

इसलिए
हे जलवासियो
डरो उस क्षण से
जब मिटेगा
पृथ्वी के तीन चौथाई भाग पर
राज कर रहे
सागर का अस्तित्व
और साथ-साथ
तुम सागरवासियों का भी!



समय के सरोकार...

रिश्ते

धूप में पेड़ों की छाँव-से रिश्ते
बरसों से बिछुड़े हुए गाँव-से रिश्ते

पूस की रात में ठिठुरते बुढ़ापे को
सर्दियों में तापते अलाव-से रिश्ते

चोट खाए कलेजों के आर-पार निकले
यादों में रिसते हुए घाव-से रिश्ते

घुले हुए पतों के संदेसे बाँचते
बाढ़ में बहे हुए ठाँव-से रिश्ते

चढ़ी हुई चाँदी के चमकते बाज़ार में
सोने के गिरे हुए भाव-से रिश्ते

पथराई आँखों से रोज बाट जोहते
रस्ते पे रुके हुए पाँव-से रिश्ते

जीवन की धारा में सदियों से बहते
पानी पर लिखे हुए नाँव-से रिश्ते।

वही तो चाहिए

जो भी जब जरूरी हुआ है जमीं को
आसमाँ को सारा वही तो चाहिए

मुट्ठी-भर धूप जहाँ बाँट दे जीवन
वो आफताब उसको आगोश में चाहिए

कुछ लोग, जो बदलते धरा का नसीब
उन सितारों का नूर फ़लक को चाहिए

झरती-सी चाँदनी में चटख जाये कलियाँ
पर चाँद का डिठौना आकाश को चाहिए

बरस जाते बादल तो बीतती उमस भी
खुदा, तेरी इजाजत तो इन्हें भी चाहिए

जी लेते हम तो यूँ तुलसी-दल लेकर भी
औषधि को अनुपान तो शहद का चाहिए

मृगछौनों के पहरे होते

परबत से ऊँचे होते या सागर से भी गहरे होते
उड़ते बादल कभी-कभी इन काँधों पर भी ठहरे होते

नदियों की, झरनों की छल-छल, डाल-डाल पंछी के डेरे
कोयल के कल-कल कलरव से जंगल-जंगल बहरे होते

विश्वासों के चलते हमने दाँत गिने थे शेरों के भी
अगर भरोसा देते गीदड़ उन के सर भी सेहरे होते

सबके हिस्से सूरज आता, रात बंदिनी चंदा के घर
किरन-किरन से सजे सुनहरे, उजले घुले सवेरे होते

साँसें मलयानिल-सी सुरभित गरिमामय गंगा का पानी
हरे-भरे फल-फूलों वाले कितने पेड़ घनेरे होते

पर बहेलिया बनकर हमने फेंके जाल मुक्त जीवन पर
काश! हमारी बन्दूकों पर मृगछौनों के पहरे होते!

सदी का संकल्प

विश्वासों की छोटी-छोटी नौकाएँ
शंकाओं के सागर भी लँघ जाएंगी
हम पतवार लिए बढ़ते ही रहे अगर
संतापों की बाढ़ वहीं थम जाएगी
आओ नाव बनाएँ सागर पार करें

उम्मीदों के पंख लगाकर उड़ जाएँ
अम्बर के चंदा-तारों से बतियाएँ
सूरज से माँगें उजास तन-मन दमके
देवनदी में बहें स्वर्ग तक हो आएँ
आओ भरें उड़ान क्षितिज को पार करें

धरती के दामन में अपनापन बोएँ
नफ़रत हिंसा बैर-भाव मन से धोएँ
खुशियाँ बाँटें उत्सव के उपहारो मे
गले मिलें, सुख-सपनों में मिल-जुल खोएँ
आओ मिटा फ़ासले सरहद पार करें,

पीडा झरते पतझर के सन्नाटों में
तेरे आँसू मेरी पलको से ढलकें
खुशियों के मधुमास खिलें जब मन आँगन
मेरी हँसी तुम्हारे होठों पर छलके
आओ इनसे उनसे सबसे प्यार करें

चुक गई सारी सदी

फ़ासले कम हों नदी और प्यास में
चुक गई सारी सदी इस आस में

बागबानी मे बबूल बिलायती
नील-कमलों को कलम करते रहे
कट गये जंगल खबर किसको लगे
शेर गीदड़ से सुलह करते रहे

दावँ पतझड़ के पड़े मधुमास में
चुक गई सारी सदी इस आस में

आदमी से आदमी तक के सफ़र
सिर्फ़ आदमखोर ने ही तय किये
हम खुले आकाश में बंदी बने
जिंदगी औ मौत बेपरदा हुए

आम-अपनापन मिले हर खास में
चुक गई सारी सदी इस आस में

झूठ की अंधी सुरंगों के भँवर
साँच सोनल साँझ-सी भटके कहाँ
टूटते विश्वास दरपन की डगर
आस्थाएँ रूप को निरखें कहाँ

संधियाँ कब हों बहू औ सास में
चुक गई सारी सदी इस आस में

सागरो से छीन सारी सीपियाँ
स्वाति जल से माँग मुक्ताहार की
रूठ रुत रानी अटारी जा चढ़ी
किन हवाओं से करें मनुहार की

प्रीत मिल जाये कहीं परिहास मे
चुक गई सारी सदी इस आस में

आलोकित करदे!

ऐ ज्योति-दीप, जगमग जग जल!
जन-जीवन में भरदे उजास।
उज्वल भविष्य के पावन पल,
तुम कर लेना जल कर तलाश।

कर दीप्त दिशा-विदिशा,
सबका जीवन-पथ आलोकित करदे!
मंगल-प्रभात की किरणों से,
नव-वर्ष दिवस झिलमिल करदे!

ये शस्य श्यामला वसुंधरा,
निधियों से झोली भरती है।
अम्बर के आँचल में अपनी,
मृदु-मर्यादाएँ पलती हैं।

लेती संस्कृति आकार यहाँ,
नित नई सभ्यता सजती है।
स्रष्टा के सुंदरतम स्वर में,
तू अनहद नाद नृत्य भरदे!

मंगल-प्रभात की किरणों से,
नव-वर्ष दिवस झिलमिल करदे!

तमहर! तृष्णा, संताप मिटा,
कर बंधनमुक्त क्लेश-कारा।
विजयी कर उसी पराजित को,
जिसने तन-मन जनहित वारा।

आशा की उजली किरणों से,
अणु-अणु आलोकित हो जग का।
विश्वासों के, उल्लासों के,
वंशी में मधुर गान भरदे!

मंगल-प्रभात की किरणों से
नव-वर्ष दिवस झिलमिल करदे!

आओ हम गणतन्त्र मनाएँ

प्रजातन्त्र की परिपाटी में एक नया इतिहास रचाएँ।
आओ हम गणतन्त्र मनाएँ।

गण हम हैं, गणतन्त्र हमारा,
पर गैरों का वारा-न्यारा।
मेहनत अपनी पूँजी अपनी,
फिर भी है व्यापार उधारा!
इस धरती के कण-कण पर हम जन्मसिद्ध अधिकार जमाएँ।
आओ हम गणतन्त्र मनाएँ।

अपने पर अपना अनुशासन,
क्यों सुनलें औरों के भाषण?
धरती अपनी सागर अपना,
बाँटें क्यों अम्बर का आँचल?
भाई-भाई गले मिलें, नफरत भूलें विश्वास जगाएँ।
आओ हम गणतन्त्र मनाएँ।

कौरव हम, हम ही हैं पाण्डव,
चहुँ दिशि वैमनस्य का ताण्डव!
कौन लड़ेंगे, कौन मरेंगे,
अर्जुन कौन, कौन है माधव!
चलो हस्तिनापुर के हित में भीष्म-प्रतिज्ञा फिर दोहराएँ।
आओ हम गणतन्त्र मनाएँ।

दोष दूर हों जन-गण-मन के।
सपने पूरे हों जन-जन के।
फूलें-फलें रचे उत्सव हम,
भारत में वैभव-वर्धन के।

विश्वशांति हित करें कामना पाञ्चजन्य-सा शंख बजाएँ।
आओ हम गणतन्त्र मनाएँ।

मुक्तक

(1)

उम्र के दुरूह रास्तों की शुरुआत में,
जो न होते उदासियों के काफ़िले साथ में।
तय कर जाते हम मंजिलें और कई,
छिड़ते नहीं जो ये सिलसिले बाद में।

(2)

प्यार की तमन्ना नहीं थी, हो गया,
दिल संभाल कर रखा था, खो गया।
किस्सा किसी और का नहीं, ये आपबीती है,
हार फूलों का था, कोई आँसू पिरो गया।

(3)

समझदार लोगों ने मुल्क में शहादत की
हमनसीब दोस्तों ने हर बात में शराफत की
दोष किसी का नहीं ये गलतियाँ हमारी हैं
कि सब-कुछ छोड़कर आपकी इबादत की।

मुक्तक

(1)

वेदियाँ यज्ञों की परिसीमित हो गईं।
आश्रम के नियमों में वर्णीकृत हो गईं।
जीवन के हवनों में आहुतियाँ इच्छा की,
मृत्यु के नियमन में फलीभूत हो गईं।

(2)

स्रष्टा के सत्ता-सोपानों का सम्मोहन।
कर्ता का कारक के कृत्यों से अनुमोदन।
मानव के चिंतन की परिधि से दूरीकृत,
कैसे समझे कोई प्रश्नों का सम्बोधन।

(3)

अन्तरिक्ष शून्य में समाया-सा लगता है।
सृष्टि का समीपन पराया-सा लगता है।
इन्द्रियाँ देह से पलायन जब माँगती,
विश्व का नयापन बनाया-सा लगता है।

(4)

वेद वाणियों में सूक्त, मन्त्र में, ऋचाओं में,
विश्व के विराट्, शीर्ष, वक्ष में, भुजाओं में,
जीव जाति धर्म कर्म भिन्न क्यूँ बने भला,
रक्त तो वही था सभी धमनियों शिराओं में।

फुरसत का दिन

इन गिने-चुने अवकाशों में
पल-भर फुरसत का वक्त कहाँ

कपड़े धोने, झाड़ू-बरतन
कुछ फटे-पुराने सिलने हैं
बच्चों के यूनिफॉर्म, टाइयाँ
मोजे भी तो धुलने हैं
जूते पॉलिश, गेहूँ बीनने
कुछ मिर्च-मसाले भी कम हैं
बिजली, केबल, अखबार, फोन
पानी के बिन आँखें नम हैं
अम्मा-बाबूजी की खातिर
मेथी के लड्डू बनने हैं
बबली-पिण्टू के टिफ़िन रोज
ख़स्ता मठरी से भरने हैं
साहब के पेट-शर्ट तुरपाई
बटन-काज भी करने हैं
साडी के उधड़े फॉल
उतरकर फिर से पूरे लगने हैं
मिर्ची डालूँ, आचार भरूँ
या धूप दिखाऊँ गद्दों को

पालक मेथी धनिया बोऊँ
बीनूँ बथुए के पत्तों को
अब शाम हुई ढलता-सा दिन
ऑफिस की पैंडिंग बाकी हैं
कल सुबह बनाने की खातिर
सब्जी की सैटिंग बाकी है

थी धूप जरा-सी, चली गई
अब ओढ़ रज़ाई सो जाएँ
ये सारे काम करेंगे फिर
अगला संडे जल्दी आए
कल सुबह बहुत जल्दी उठकर
फिर से मशीन बन जाना है
यूँ माह जनवरी के दिन का
क्या उगना, क्या छिप जाना है

इस लुका-छिपी के आलम में
सूरज को पकड़ें कहो कहाँ
इन गिने-चुने अवकाशों में
पल-भर फुरसत का वक्त कहाँ!

अमर तुम्हारा नाँव

कौन तिरंगे में लिपटा यह आया मेरे गाँव
शत-शत नमन तुम्हें भैया, है अमर तुम्हारा नाँव

किस माँ के आँचल की ममता
उमड़ी आज चली है
ललना कौन ललाम आज
सिंदूरी शाम ढली है!

किस माटी के कण-कण में यह हुलसा पड़ा उछाव
शत-शत नमन तुम्हें भैया, है अमर तुम्हारा नाँव

जननी तेरी जननी जिसने
जनमा पूत सपूत
पिता पूज्य कुल धन्य
मिला यश जिसको आज अकूत
बचपन जहाँ बिताया तूने पावन है वह ठाँव
शत-शत नमन तुम्हें भैया, है अमर तुम्हारा नाँव

लाल कसूमल धानी चूनर
कंगन बिछिया पायल
तेरे घावों का मरहम थे
हुआ जहाँ तू घायल

तेरे साथ चले आए थे मेहँदी-राचे पाँव
शत-शत नमन तुम्हें भैया, है अमर तुम्हारा नाँव

प्रीत तुम्हारी प्रखर जोत
बाँटे उजियारी आन
दो नयनों ने बाँच लिए हैं
सारे बेद-कुरान

तीज सिंजारे ईद मुहर्रम भर देंगे सब घाव
शत-शत नमन तुम्हें भैया, है अमर तुम्हारा नाँव

तेरे घर खुशियों के मेले
आँगन में उपवन हों
एक नहीं अनगिन जीवन भी
वारें तुम पर, कम हों

बारूदी युग में भैया तुम गुलमोहर-सी छाँव
शत-शत नमन तुम्हें भैया, है अमर तुम्हारा नाँव

महिमा-मण्डित हों

रण-प्रांगण की साख बने जो, वे आँगन चंदन-चर्चित हों
सीमा की प्राचीर बने जो, उन के घर महिमा-मण्डित हों

वीर कथाओं की लोरी में
जिन माँओं ने शौर्य पिलाया
युद्ध-भूमि की उपल-विषमता
पर घुटनों चलना सिखलाया
उँगली पकड़ चले जिनकी, वे पिता पूज्य नित अभिनन्दित हों
रण-प्रांगण की साख बने जो, वे आँगन चंदन-चर्चित हों

अमरपुरी-सा अमित यशस्वी
तेरा गाँव, गाँव की माटी
मातृभूमि पर मर-मिटने की
सदियों तलक चले परिपाटी
भैया के हाथों बहना का रक्षा-सूत्र सदा अक्षत हो
रण-प्रांगण की साख बने जो, वे आँगन चंदन-चर्चित हों

अमर तिरंगे के रँग राची
जिनकी मेहँदी, कजरा, कंगन
तेरी त्याग-तपस्याओं का
जिनके रोम-रोम में अंकन
बाट जोहते उन नयनों की प्रीत अमर इतिहासांकित हों
रण-प्रांगण की साख बने जो, वे आँगन चंदन-चर्चित हों

सदा सुहागन हों वे सतियाँ
जिनका कुंकुम क्लान्त हुआ है
खिलें, फलें, फूलें वे कलियाँ
जिनका मन विश्रान्त हुआ है
अमर शहीदों की स्मृतियों से पुण्य-धरा शोभित-सुरभित हो
रण-प्रांगण की साख बने जो, उनके घर महिमा-मंडित हों

रोशनी के हौसले बढ़ते गये

साजिशें जितनी अँधेरों ने रचीं,
रोशनी के हौसले बढ़ते गये।

बरगदों के कोटरों में गिद्ध-घर
पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों पनपा किये
बादलों ने देख तिनके चोंच में
पंछियों के घर कहर बरपा दिये

नीड़ का निर्माण तो होकर रहा
पेड़ चाहे दम-ब-दम घटते गये
साजिशें जितनी अँधेरों ने रचीं
रोशनी के हौसले बढ़ते गये

धूल जितनी पाँव से रौंदी गई
उड़ चली आकाश की ऊँचाइयाँ
बाँधने बहती नदी को हम चले
हाथ में पकड़े हुए परछाइयाँ

उम्र के अस्तित्व बंधनमुक्त हो
हम समय की सीढ़ियाँ चढ़ते गये
साजिशें जितनी अँधेरों ने रचीं
रोशनी के हौसले बढ़ते गये

पिघलता लोहा

ठण्डा पड़ता जा रहा है
लोहा
भागते वक्त की रफ्तार में
मीलोंमील
पिछड़ गई
लुहार के हथौड़ों की
सधी हुई आवाज

नहीं सुनना चाहते हम
यह कर्कश ध्वनि
बमुश्किल
ठण्डा किया है हमने
गरम लाल लोहा
सोई हुई धमनियों में
जमे हुए रक्त के
लाल छींटों से
तपते हुए लोहे पर
बजता संगीत क्यों सुनें हम
हलकी-सी आहट
काफी है हमें
छुप जाने को
अपनी ही परछाइयों में
और यह एहसास क्या कम है
कोई नहीं देख रहा हमें

सुनसान रास्तों पर
काँपते हाथों से
तीलियाँ बीनते हैं हम
यूँ ही नहीं जलती आग
लोहे के गरम होने की संभावना
करती है हमें भयभीत
क्योंकि चुक गया है अब
ठण्डा खून हमारी रगों में

पर
लुहार को नहीं चाहिए तीलियाँ
उसके पास हथौड़ा है
जिसकी एक-एक चोट
ध्वस्त करती है
सैकड़ों स्तब्धताएँ
उन्हीं में शामिल है
हमारी अपनी चीख
जोर से नहीं चीखते हम
क्योंकि इतनी ऊँची नहीं है हमारी आवाज
जो तोड़ सके उसका संकल्प
लुहार फिर पीटता है लोहा
और हम भागते हैं
दोनों हाथों में चाकू लेकर
लुहार हँसता है
हमारी बर्बर सभ्यता पर
उसे भरोसा है
नहीं रुकेगा उसका हथौड़ा
खून ही होगा गरम
या फिर लोहा पिघलेगा।

पदचाप सुनी-सी लगती है

ये कौन बटोही है जिसकी
पदचाप सुनी-सी लगती है
है किसका अंक विशाल जहाँ
शापित वसुंधरा पलती है

है किसका अभिनव गान जहाँ,
अगणित साँसें सुर पाती हैं
किससे मिलने की आतुरता
जीवन को बहका जाती है

ये किसके पावन हाथ कि जो
नित नूतन रंग सजाते हैं
ये किन चरणों की आभा है
जिसमें जीवन खिल जाते हैं

किसके नयनों का मधुर स्वप्न
अविराम धरा पर पलता है
किसकी तृष्णाओं का विकास
अनगिन रूपों में ढलता है

हे देव! नहीं हम जान सके
कण का, क्षण का, उद्भास कहाँ
है संधि कहाँ निशि-वासर की
होता ऋतुओं का वास कहाँ!

कैसे रच पाऊँ गीत तेरा
हे विश्वरूप! मैं अज्ञ-बाल
किस तरह समाहित कर पाऊँ
इस क्षुद्र पात्र में मैं विशाल

हे सत्य, सनातन, विश्वरूप!
जन-जन में तेरा नित्य वास
साँसों में सुरभि प्रदान करो
अंतस में फैलादो उजास

मधुमय गीतों के चित्रकार
आलोकित विश्व समग्र करो
हृदयों में प्रेम भरो पावन
निर्मल आकाश निरभ्र करो

तुम अपने अरुणिम अधरों से
दो गीत, मुझे दो सत्य आज
अस्तित्व हो रहा है झंकृत
कण-कण को देदो नृत्य आज।

प्रीत का उपहार दूँ

अधर पर ले आ, कि तेरे गीत को झंकार दूँ
आ हृदय के पास तुझको प्रीत का उपहार दूँ

दूर तक कोई किरण जब
ये नयन ना देख पायें
दीप बन जा फिर न तुझको
ये अँधेरा रोक पाये
राह कुछ लम्बी सही
कुछ मोड़ अनचाहे सही
किंतु जाने कौन किस पग पर
तुम्हारा ठौर आए

सिंधु-सा गहरा करूँ आकाश-सा विस्तार दूँ
आ हृदय के पास तुझको प्रीत का उपहार दूँ

मेघ बरसे बूँद छलके
प्रीत की सरिता बहे
मलय के झोंके सुगंधित
मिलन की कविता कहें
अश्रुपूरित नेत्र वसुधा पर
न मिल पाये कभी
हों सभी सम्पन्न,
अंतर में न निर्धनता रहे

नृत्य कर, उत्सव मना, अस्तित्व एकाकार दूँ
आ हृदय के पास तुझको प्रीत का उपहार दूँ।

चैन नहीं क्यों वसुधा पर

निस्तब्ध निशा नीरव वासर।
फिर चैन नहीं क्यों वसुधा पर।

क्यों सिहर रही है मानवता
हिंसा के कुटिल कुठारों से
क्यों वंचित हैं ये सम्प्रदाय
शासन के क्वचित् सुधारों से

क्यों रह-रह कर ये कुलिश घात
निर्धनता के उर आँचल पर

निस्तब्ध निशा नीरव वासर
फिर चैन नहीं क्यों वसुधा पर

हर आशा व्याप्त निराशा से
जन-जन का मानस सुलग रहा
कहने को हर उद्यान यहाँ
मय नागफनी के महक रहा
अदृश्य नीवँ का उपालम्भ
इन दृश्यमान कंगूरों पर

निस्तब्ध निशा नीरव वासर
फिर चैन नहीं क्यों वसुधा पर

सबको अपनी-अपनी चिन्ता
सर्वोदय-रहित प्रयोजन से
है स्वार्थ साधना ही प्रथमा
क्या सरोकार सुनियोजन से
फिर भी क्यों हतोत्साह सबके
हावी है तौर-तरीकों पर

निस्तब्ध निशा नीरव वासर
फिर चैन नहीं क्यों वसुधा पर

हर सुबह बिना उल्लासों के
यन्त्रित-सी दुपहर आती है
कुछ किस्म उदासी की लेकर
हर रोज शाम ढल जाती है
घिर आती है काली रजनी
आलस्य लिए ढेरों-मन-भर

निस्तब्ध निशा नीरव वासर
फिर चैन नहीं क्यों वसुधा पर

माटी की काया मतवाले

माटी की काया मतवाले
तू बाती का मन ना जाने!

तप्त तेल में तन-मन छीजे
तिल-तिल जले तुम्हीं पर रीझे
तमहर, गीत उजाले के तू
पीर अँधेरे की ना जाने
माटी की काया मतवाले!

तू जलता है तेरे भीतर
कोमल-सी काया घुलती है
जाने कौन कनक चौबारे
विरहन की आसा फलती है
दीपक! औरों की रहने दे
तू तेरे मन की ना जाने
माटी की काया मतवाले!

घर-घर में उजियारा बाँटे
तुझसे हारे सब सन्नाटे
खील बताशे सक्करपारे
गली गाँव नुक्कड़ पर बाँटे
पागल! अपने मन-आँगन के
गीत बधावे तू ना जाने
माटी की काया मतवाले!

जगमग जल तू तुझसे पहले
राख बनेगी जीवन बाती
जैसे कोई नई-नवेली
बाँच रही हो पहली पाती
ढाई आखर की भासा तो
पढ़ना तू अब भी ना जाने

माटी की काया मतवाले!

सुन स्वामीनारायणन्

मालिक तेरे एक का इतना बड़ा मकान
उस दिन छोटा क्यूँ पड़ा जिस दिन हुई अजान

सजदे में जब सर झुके सबने माँगी भोर
दिन रहते ही बढ़ गया अँधियारा चहुँ ओर

मंदिर घंटा आरती करते चीख-पुकार
तहखाने में बंद हो, सोना घड़े सुनार

माँएँ बच्चों के बिना, बूढ़े बिन घर-द्वार
जिसका साँईं था जहाँ सो ही पालनहार

मौला के घर ना मिला मौलवियों को त्राण
तेरे आँगन भी भला बनते हैं शमशान!

आतंकी हमले हुए गोली सीने पार
छिपने को छत ना मिली हरि के आँगन-द्वार!

सूफ़ी संत फ़कीर सब हाथ मलें पछताय
मंदिर मस्जिद एक है कौन इन्हें समझाय!

सुन स्वामीनारायणन् घट-घट के पट खोल
मन चंदन पावन बना महँगे मोती मोल

तेरे घर तो देर है कैसे हुई अँधेर
सबको सन्मति दे प्रभु लगा न इतनी देर

हे मेरे परमात्मा! सबकी रखना ख़ैर
भाई-भाई में भला, कितने दिन का बैर

शारदा कृष्ण अपने काव्य-संग्रह 'संवाद-संभव' में कविता का सम्पूर्ण संसार लेकर उतरी हैं। 'बरसों-बरस अकेले', 'भेदते हुए जल-व्यूह' और 'समय के सरोकार' द्वारा कविता-संसार को खण्ड-बद्ध करने का प्रयास करते हुए शारदाजी अपनी भावनाओं को शब्दों में रचने में माहिर साबित हुई हैं।

शारदाजी की कविताओं में जीवन के समस्त रंग दिखाई देते हैं। वे हौले-हौले अपने दर्द की झलक दिखाते हुए आगे बढ़ती हैं। 'सवेरा फिर क्यूँ आया, तुम होते तो सावन होता, सपने किसके सगे हुए हैं' जैसी कविताओं में वे 'बरसों-बरस अकेले' खण्ड के माध्यम से इस अन्दाज में कहती हैं कि उनका जीवन के प्रति दर्द एक झिर्री से ही दिखाई पड़ता है।

वे रंगों के माध्यम से कोशिश करती है दर्द को भुलाने की, रंग प्रीत का/साथ मीत का/काश कि यूँ हो/कभी न छूटे। परन्तु काव्य-संग्रह का दूसरा खण्ड दर्द की तीव्रता के साथ अवतरित हुआ है और उनके कविता-संसार के पट तेजी से खोलता चला जाता है। ...कहाँ तक संगत है/अधजले अंगारों का/राख हो जाना। ...इस तरह वे रोज मन को टूटे दर्पण के टुकड़ों-सा महसूस करती हैं और उन्हें बटोरकर सम्भाल भी लेती हैं। ...संवाद कभी/सम्भव नहीं हुआ/हम दोनों के बीच/अक्सर एक खास मुद्दे पर आकर/हम बेजुबान हो गए... 'संवाद संभव' को सार्थक करती इस कविता तक आते-आते उनके काव्य-संसार के पट पूर्णतः खुल जाते हैं।

'समय से सरोकार' खण्ड में उनकी कविता वैयक्तिक से वैश्विक हो गई है। जिसमें रिश्तों, गणतन्त्र, शहीदों से लेकर अक्षरधाम तक की घटना को काव्य में पिरोया है। अन्त में उनके भावों की तीव्रता उबल कर बाहर आ जाती है—साजिशें जितनी/अँधेरों ने रची/रोशनी के/हौसले बढ़ते गए।

शारदाजी की छन्दात्मक शैली की लम्बी कविताएँ बाँधने में अपेक्षाकृत अधिक सक्षम है।

—संगीता सेठी